मुहर्रम और इमाम हुसैन(अ०)

मौलाना हसन अब्बास ''फितरत'' साहब

मोहर्रम से मुसलमानों के हिज्री साल की इब्तिदा होती है, यह सब मानते है लेकिन यह भी एक ज़िन्दा हक़ीक़त है कि सन् 61 हि0 वाले मोहर्रम में इस्लाम के वे रूह तन को नयी ज़िन्दगी मिली। करबला के वाक़िए पर ग़ौर किया जाये तो आज के माहौल में उसकी ताबानी (चमक) और बढ़ जाती है। हैरत का मुक़ाम यह नहीं कि रसूल–ए–इस्लाम (स0) की वफ़ात पर पचास साल भी न गुज़रे थे कि हालात ने जाहिलियत का दौर पलटा दिया। इस्लाम और इंसानीयत के आला उसूलों को गर्द व गुबार बना दिया। हिर्स व हवस दुनिया की चाहत और शहवत पसन्दी का ग़लबा हो गया। क्यों कि ऐसा तो होता ही आया है। आज भी हम अपने इर्द–गिर्द का मुशाहदा कर रहे हैं। अलबत्ता मोअ्ज़िज़ः यह है कि लहू की धारों ने कैसे इस गन्दगी के सेलाब को रोक कर उसका रूख़ मोड़ दिया, निफ़ाक का गला घूँट दिया। हक़ व बातिल के दो अलग अलग रास्ते बना दिये कि उनका मिलान अब क़ियामत तक नहीं हो सकता।

मोहर्रम दर अस्ल दुनिया पर दीन की फ़त्ह का एलान है।

इसे इस तरह देखना चाहिये कि दीन में कितनी ताक़त है और इसकी हिमायत के लिये जब कोई बन्दः–ए–सालिह ख़ुलूसे नीयत व बे नफ़्सी के साथ उठ खड़ा होता है तो दुनिया की हर ताक़त यानी ज़ोर ज़र और मक्र व ज़ोर का हर हमला ख़ुद ज़ालिम के गले का फन्दा बन जाता है। हुसैन (अ0) ने इस्लाम को ज़िन्दा किया तो इस्लाम ने हुसैन (अ0) को, कर्बला को आशूर को, तीन दिन की भूक प्यास, ग़ुर्बत व मज़्लूमीयत को याद रखा और आइन्दा के लिये पयग़मबरे इस्लाम (स0) के बाद के दौरे, इरतिदाद व इल्हाद के तूफ़ान में हुसैन (अ0) ही आंधियों में चराग़ की मिसाल बन कर हिम्मत व दिलासा देते रहेंगे और इस्लाम को हयाते ताज़ा मिलती रहेगी। हुसैन और करबला की मारिफ़त व शिनाख़्त बढ़ती रहेगी।

हुसैन (अ0) की शहदात को उनके ख़ूने नाहक़ को, उनकी मुबरक व बलन्द गर्दन को, उनके तपीदा व फ़राख सीने को, उनके इस्तिक़ामत व सब्र को, उनकी शुजाअत व इबादत उनकी फ़त्हे मोबीन को याद करना हर शख़्स के लिये मोफ़ीद व बाअ्से फ़ख्र है। हुसैन (अ0) ने करबला में यह भी बता दिया कि इस्लाम दीने फितरत है, दीने इंसानीयत है। यह बन्दगी, इज्ज़ और इंकिसार का दीन है। यह दर्दमन्दी का ईसार का, दिलावरी का दीन है। यह न रोबाहों, गोस्फ़न्दों गीदड़ों, गदहों कछुवों का दीन है न क़ातिलों, लुटेरों ग़ारत गरों, ख़ूख़ारों का, ये जी हुज़री फिदविदते जो मरंज़ा नरगसीयत व कल्बीयत का दीन भी नहीं है बल्कि यह उस इंसान का दीन है जो अगर अल्लाह के आगे सर झुकाता है तो उसकी मख़्लूक के साथ मोहब्बत करके उस पर मुहरेतस्दीक़ भी लगाता है। यह उसका दीन है जो इज़्ज़ते नफ़्स, शराफ़ते नसबी, बलन्दी–ए–अख़्लाक़ की हिफाज़त करता है उसी के लिये जीता है और उसी के लिये मरता है हुसैन (अ0) का क़ौलः–

''अिज़्ज़त की मौत ज़िल्लत की ज़िन्दगी से बेहतर है'' हक़ीक़त में बशरीयत के माथे का झूमर है जिसके बिना सोलह सिंगार भी फीका नज़र आयेगा। मोहर्रम का महीना बड़ी बरकतों और पैग़ामात का हामिल है, इसी तरह हुसैन (अ0) भी ज़िन्दगी के हज़ारहा राज़ समेटे हैं। उसकी जनाब में वही दाख़िल होने की हिम्मत

कर सकता जो दीन की ताक़त से आगाह हो, और जो बन्दगी के कैफ़ व कम से आशना हो रस्म व रस्मीयात का गुलाम न हो और इतना तंग दिल भी नहीं कि उसे मेहराब व मिंबर के सिवा कहीं हक़ का जलवा ही नज़र न आये।

सर दाद नदाद दस्त दर दस्ते यज़ीद

सर दे डाला, मगर यज़ीद के हाथ में, (बैअत का) हाथ न दिया।

''नातवानी में ताक़त, बेबसी में हिम्मत, अज़ीयत में राहत, ग़म व अलम में लज़्ज़त, यास में आस, मौत में ज़िन्दगी, हार में जीत, एक ऐसा फ़लसफ़ा है जिसे सन 61 हि0 के खूनी मारिके को सर करके हुसैन बिन अली (अ0) ने हक़ीक़ते जाविदानी में ढाल दिया है। अब करबला आशूर–ए–मोहर्रम, ऐसी ज़िन्दा अलामतें बन गयी है जिन की कोख से अबद–उल–आबाद तक आज़ादी हुर्रीयत, शराफ़त व इंसानीयत की नयी नयी कोपलें फूटती रहेंगी। हक़ व बातिल की वह जंग जो हाबील व क़ाबील से शुरूअ् हुई थी उसका ख़ातिमा हुसैन (अ0) व यज़ीद पर होना था चुनांचे अगर यज़ीद ने ज़ुल्म व वरबरीयत की इन्तिहा कर दी तो सब्र व शकेब, ज़बत व इस्तिक़ामत के मनार–ए–नूर को हुसैन (अ0) ने आसमान की बलन्दी दे दी। आने वाली सदियों में ज़ुल्म अपने रूप के साथ आता रहा मगर उस्वः–ए–शब्बीर से रौशनी हासिल करने वाले ज़िन्दा ज़मीर व बेदार क़ल्ब वाले अफ़राद कभी उसे ख़ातिर में नहीं लाये और जिस तरह सय्यदा (स0) के लाल का ख़ून मिल्लते इस्लामीया के लिये आबे हयात बन गया था, उसी तरह से राहे वफ़ा के इन मनचलों का लहू नीम खुफ़्ता व नीम बेदार इंसानों को होश मन्द व सैले रवां में बदल दिया करता है।

इमाम हुसैन (अ0) के सामने दो रास्ते थे, एक तो यह कि नंग–ए–इंसानीयत व ज़िद्दे बशरीयत यज़ीद की हां में हां मिला कर उसके मोसाहिब व वज़ीफ़ा ख़ूर बन जायें, इतना ही नहीं बल्कि मुम्किन था कि उसे अपना ताबेदार व कफ़्श बरदार जैसा बना लें और फ़िर हर मुम्किन अैश व इशरत से आरास्ता व मुज़य्यन ज़िन्दगी में गुम हो जायें और हर ख़ौफ़ व अन्देशे से महफ़ूज़ होकर शब व रोज़ अल्लाह हू अल्लाह हू का विर्द करते रहें। एक तवील उम्र तक वरना फिर ''नहीं'' करके इस ख़ाइन जाबिर हाकिम की तमाम तर शक़ावत व दरिन्दगी के दहने सियाह का लुक़्मा बन जाये। अपने तई हौलनाक व दर्दनाक तरीन मसाएब व आलाम के सुपुर्द कर दें और जो भी गुज़रे उसे झेलने के लिये अज़्म बिल–जज़्म कर लें।''

हुसैन (अ0) ने खूब ग़ौर किया, सोचा समझा, बुज़ुर्गों के वसाया व नसायह पर नज़र की और फ़िर आखिरी रास्ते को ही दुरूस्त व पुरसमर जान के अपनाया जान बकफ़न बदोश आगे बढ़े। जो मिला उसे भी अपने रंग में रंग लिया नाक़िस को छांट दिया। अह्ल का इन्तिज़ार किया और मदीने से करबला तक के तूफ़ानी सफ़र में क़ई माह लगा दिया। यहां तक कि बहत्तर की तादाद एक जान व एक तन होकर सामने आ गयी जिसे न हज़ारों का लश्कर डरा सकता न भूक प्यास, ग़ुर्बत व बेचारगी, कमज़ोर कर सकती थी। यही वजह है कि करबला के बहत्तर आज सदियों के बाद भी ज़िन्दा है और हमेशा उनकी याद मिल्लत की कूवत व ताक़त का सरमश्मा बनी रहेगी।

खुलासा यह कि यह ''नहीं'' का मारेका था मैदाने जंग का जीतना मक़्सदे हुसैन न था वरना शुजाअते बनी हाशिम के लिये वह भी कुछ मुशिकल बात न थी। इमामे आली मुक़ाम के लिये तनहा जान दे देना बहुत आसान था मगर सिर्फ़ मर जाना उनका मतलूब न था। वह दुश्मन को मर के मारना चाहते थे, इसके लिये एक जमाअत की ज़रूरत थी जिस में से कुछ मारे जायें और कुछ ज़िन्दा रहें और उन ज़ालिमों के हाथ काट डालें जो मक़्सद–ए–शहादते हुसैन पर पर्दा डालने की कोशिश में लगे हों और यह जमाअत मामूली इंसानों की न थी उनमें सब के

सब इश्क़े इलाही की मेअ्राज पर थे। यह फ़ना फ़िल्लाह अफ़राद की ज़माअत थी यह मौत के भूकों का गरोह था और शहादत के प्यासों का जर्गा ऐसे लोग जो सुब्ह से अस्र तक मैदान में जमे रहे ताकि उनकी मौत को इतिफाक़ी हादिसा न बनाया जा सके। न उनके खून से ज़ालिम अपनी आस्तीन व दामन को पाक कर सके, हाँ ! हुसैन (अ0) जुल्म के तमाम हथकण्डों से वाफ़िक थें करबला की चटियल रेती पर हुसैन (अ0) का खून गिरा। बच्चे, बूढ़े, जवान सब के लहू से ज़मीन लालज़ार बनी मगर दरहक़ीक़त यह सारा खून इस्लाम के नहीफ़ व नाज़ार जिस्म में दाखिल होकर उसे ज़िन्दा व ताबिन्दा बना गया। इस्लाम जिसकी सूरत भी मस्ख़ हो चुकी थी इंसान की अपनी शिनाख़्त की क़सौटी बन गया और निफ़ाक़ के भंवर से उसे हमेशा के लिये रिहाई मिल गयी। हुसैनीयत अब इस्लाम की शिनाख़्त हो गयी है और यज़ीदियत कुफ़्र व निफ़ाक़ की अलामत है।

पेज नं0 34 का बक़िया...........

का चन्द्र बन गये और सदा सदा के लिये मानव-मन-मस्तिष्कको अपनी शीतलता प्रदान करते रहेंगे। यज़ीद जो धनवान था, मुकुटधारी था, राज्य सेना, प्रासाद धन-धान वाला था, गुमनामी के अंधकार में डूब कर मिट गया। गांधी हों या टैगोर,राधाकृष्णन हों या शंकराचार्य सभी के लिये हुसैन का व्यक्तित्व पूजा के योग्य है। मैं महात्मा गांधी के शब्दों में एक बार फिर महान हुसैन, सच्चे हुसैन, अहिंसा के पुजारी व बन्धुत्व के मार्ग दर्शक हुसैन को श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ।

''हुसैन हम भारत-वासियों के लिए स्वतंत्रता-संग्राम के सेनापति की तरह हैं, मैंने कर्बला के हीरो की जीवनी का गूढ़ अध्ययन किया है और इससे मुझको पूर्ण विश्वास हो गया है कि भारत का यदि कल्याण हो सकता है तो हमें हुसैनी उसूलों पर चलना होगा''।

पेज नं0 13 का बाक़िया...........

हो जाएगा कि सचमुच पैग़म्बर[स0] और पैग़म्बर[स0] के घराने वाले न कभी तुमको भूले ओर न तुम को कभी नज़रअन्दाज़ किया गया। इमाम हुसैन[अ0] ने तुमको भी अपने आख़िरी वक़्त में याद किया था और तुम्हारे बीच बसने की इच्छा व्यक्त की थी। विश्वास मानों अगर हुसैन[अ0] यहाँ आने पाते तो तारीख़े आलम (विश्व इतिहास) का धारा मुड़ गया होता।

हरि इच्छा, करबला के शहीद का मनोरथ क्यों कर पूरा कर रही है।

सोगवारो! हुसैन[अ0] तो करबला में तीन दिन के भूखे प्यासे शहीद कर डाले गये। आपकी लाश घोड़ों की टापों से रौंद डाली गयी।

आपका सर भाले की नोक पर दरबदर फिराया गया। लेकिन परमशक्ति को हुसैन[अ0] की बात का बड़ा पास (लिहाज़) है। देखो हुसैन[अ0] तो हिन्दुस्तान तशरीफ़ नहीं लाए मगर उनका ताज़िया हर साल आता है। दुलदुल, पैग़म्बर[स0] के कांधे पर बैठने वाले की सवारी की शान दिखाता है। अब्बास तो फुरात के किनारे शाने कटा के आराम कर रहे हैं। लेकिन आज भी अब्बास[अ0] का अलम नगर—नगर गांव—गांव गश्त करता है।

क़ासिम बिन हसन[अ0] तो जवानी की नींद सो गये लेकिन उनकी मेंहदी अब भी उठायी जाती है। 6 महीने के अली असग़र[अ0] तो हुरमुला के तीर का निशाना हो गये लेकिन उनका गहवारा (उनका पालना) उनके बेज़बान और मज़लूम और पीड़ित होने का मूक प्रचारक है।

हुर के वृतान्त को ध्यान से सुनो और समझो कि हुसैन[अ0] दुश्मन को क्योंकर दोस्त, बना लेते थे। और अपने त्याग भाव और सौजन्य से कैसे मनमोह लिया करते थे।

